सिरमौर जनपद् के लोक वाद्यों की बनावट एवं वादन विधि

Dr. Harvinder Sharma
Principal, Govt. P.G.College Kalka, Hariyana

सिरमौर जनपद् हिमाचल प्रदेश के दक्षिणी भाग में अवस्थित है। इस जनपद् की सीमाएँ उत्तर दिशा में प्रदेश के जिला शिमला तथा पश्चिम में जिला सोलन से लगती हैं जब कि इस के पूर्वी भाग में उत्तराखण्ड तथा दक्षिण में हरियाणा राज्य की सीमाएँ छूती हैं। सौन्दर्य से भरपूर सिरमौर में हिमाचल प्रदेश की सब से बड़ी प्राकृतिक झील रेणुका, ददाहु से दो किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह पवित्र झील ऋषि जमदग्नि की पत्नी तथा भगवान् परशुराम की माँ से सम्बन्धित है। एक ओर जहाँ इस की मनोहारी छटा को देखने के लिए पर्यटकों की भीड़ लगी रहती है, वहीं दूसरी ओर हजारों श्रद्धालु पूरे वर्ष इसमें आस्था की डूबकी लगाकर पुण्य कमाते हैं। विभिन्न ग्रंथों में वर्णित कुरु–जनपद् के समीप स्थित कुलिंद नाम से वर्णित सिरमौर की भूमि भारतीय संस्कृति का क्रीड़ा–स्थल रही है।

यहां के लोग धर्म–परायण, भोले–भाले तथा चरित्रशील हैं। इस जनपद् की लोक–संस्कृति पूरे प्रदेश में विशेष महत्व रखती है। विभिन्न धार्मिक एवं लौकिक आयोजनों पर गायन एवं नृत्य कला प्रेमी अपनी गायन एवं नृत्य कला की छटा बिखेरते हैं। सिरमौर जनपद् के विशिष्ट वाद्य यन्त्रों के संगीत के बिना, गायन एवं नृत्य न केवल अधूरा लगता है बल्कि असम्भव बन जाता है।

त्योहार तथा मेले यहां की लोक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। सिरमौर जनपद् में वर्ष के बारह मासों में से हर मास कोई न कोई त्योहार अवश्य मनाया जाता है, इन त्योहारों की विशेषता यह है कि इनमें प्रत्येक त्योहार से लोक प्रचलित कोई न कोई पौराणिक घटनाएं जुड़ी हैं ऐसा लोगों का विश्वास है। इन त्योहारों में क्रमशः – चैत्रमास का त्योहार, बिशु–त्योहार, जेठोरा मोऊल, हरियाली, शोणयाली, कृष्ण जन्माष्टमी, पा०चोई, ओशाउजोरी आठोई, विजय दशमी, गरबड़े, नई–दीवाली तथा बूढ़ी दीवाली, माघी त्योहार, खोड़ा त्योहार, शिवरात्रि तथा होली का त्योहार धूम–धाम से मनाए जाते हैं।

सिरमौर जनपद् में लोक संगीत का अपार भण्डार है। सिरमौरी लोक संगीत भूतकाल से लेकर वर्तमान काल तक समृद्ध शील है। यहां के जनमानस ने आज के

बदलते हुए वैज्ञानिक परिवेश में अपनी लोक संगीत रूपी धरोहर को जीवित रखा हुआ है। इसने अपने परम्परागत लोक संगीत की रक्षा ही नहीं की है बल्कि इसे और परिष्कृत करने का भी प्रयत्न किया है। यहां के लोक संगीतज्ञों ने अपने प्रदेश ही नहीं बल्कि देश–विदेश के विभिन्न भागों में अपनी लोक–संस्कृति का उत्कृष्ट प्रदर्शन कर अपनी अमूल्य संस्कृति को चार चान्द लगाए हैं। रेणुका जी, शिलाई तथा राजगढ़ (पच्छाद) जैसे पिछड़े क्षेत्र के लोगों ने अपने परम्परागत गीतों एवं लोक–नृत्यों, नाटी, झूरी, रासा, हारूल और बूढ़ा इत्यादि लोक सांगीतिक परम्पराओं को सुरक्षित किया है।

सिरमौर जनपद् के लोक–नृत्यों तथा लोक गीतों में मुख्यतः अलग–अलग प्रकार के सिरमौरी वाद्य प्रयुक्त किए जाते हैं। इन नृत्यों में क्रमशः, नगाडा, दुमैनू (दमामा) छड़ी की ढोल, ढोलक, खंजरी, हुलकी, मंजीरा, छणका, रणसिंगा, करनाला तथा स्वर वाद्य के रूप में शहनाई तथा बांसुरी का प्रयोग भी देखने को मिलता है। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में आज भी लोकसंगीत पुष्पित तथा पल्वित हो रहा है, आज भी लोक संगीत कृत्रिमता से दूर है। इसमें ताल यन्त्रों का प्रभुत्व विद्यमान है। लोक–नृत्यों में लोकवाद्यों की संगत के बिना नृत्य एवं गीत दोनों ही पंगु है। लोकगीत एवं लोक नृत्य दोनों में ही वाद्यों की आवश्यकता समान रूप से होती है। इन दोनों विधाओं में प्राण डालने की भूमिका वाद्य यन्त्र ही निभाते हैं।

लोक वाद्य

सिरमौरी जन समुदाय जीवन संगीत के बहुमान्य आदि–प्रवर्तक भगवान शिव की सांगीतिक धरोहर को सुरक्षित रखे हुए हैं। इसका स्पष्ट प्रमाण यहाँ का सरल लोक जीवन, मधुर कंठसंगीत, पारम्परिक लोक वाद्य व वाद्य संगीत तथा आकर्षक लास्य पूर्ण नृत्य। संगीत के ये तीनों पक्ष सिरमौरी लोक संगीत में उजागर हैं, और इनका मधुर आकर्षक, लालित्यपूर्ण तथा स्वाभाविक रूप यहां दृष्टिगोचर होता है। गीत एवं नृत्य की भांति ही सिरमौर का पारम्परिक वाद्य–संगीत भी सुप्रसिद्ध है। जन्म से मृत्युपर्यंत, जीवन के विभिन्न चरणों में हर्ष–विषाद के अवसरों तथा विभिन्न मान्यताओं व चुनौतियों के अनुरूप वाद्य वादन की परम्परा सिरमौरी वाद्य संगीत की व्यापकता व विविधता का परिचायक है।

सिरमौरी लोक–वाद्यों में सुषिर, अवनद्ध तथा घन, तीन प्रकार के पारम्परिक लोक वाद्य विद्यमान हैं। यहां ढोल, नगाड़ा दुमैनू, मंजीरा छैणा, रणसिंगा, करनाल, खंजरी,

हुलकी, ढाकुली, कांस्य थाली, घड़ा, डमरू, छड़ियाल, भायण, शहनाई तथा बांसुरी आदि। इन लोक वाद्यों में बांसुरी, ढोलक और खंजरी वाद्यों को छोड़कर शेष वाद्य विवाह, पुत्र–जन्म, मेलों व जात्तरा जैसे विशेष अवसरों पर तथा देव स्थानों पर बजाए जाते हैं। इन विशेष अवसरों पर श्रृंगारिक लोक–संगीत में प्रयुक्त होने वाले ढोल, शहनाई व नगाड़ा आदि वाद्य भी सम्मिलित होते हैं। बांसुरी, खंजरी और ढोलक आदि वाद्य प्रायः श्रृंगारिक लोक–संगीत के वाद्य है।

बांसुरी

इस वाद्य को स्थानीय भाषा में लोग बांसुरी और बांसुली के नाम से पुकारते हैं। यह सुषिर वाद्य कभी कभार जंगल में पशु चराने वाले ग्वाले तथा भेड़–बकरियां चराने वाले गड़रियों के मुख पर सुशोभित होकर सुनसान जंगलों एवं गांव से दूर चरागाहों में संगीत मय घुनों से सगीत का रस पान कराता है। यह वाद्य एक प्राचीन वाद्य है जिसका वर्णन वेदों तथा पुराणों इत्यादि अनेक ग्रन्थों में मिलता है।

वर्तमान सयम में बांसुरी वाद्य का निर्माण पीतल, स्टील तथा चन्दन एवं चिकनाई युक्त बांस की नलिकाओं द्वारा होता है। सिरमौर में बांस की बनी हुई बांसुरी ही प्रचलित है। इसके बांस की लम्बाई लगभग बारह और पन्द्रह इंच तक रहती है तथा इसमें मुख के पास फूंक लगाने के लिए एक छिद्र तथा विभिन्न स्वरों की उत्पति के लिए छः और छिद्र विद्यमान रहते हैं इसका बांस मोटाई में लगभग आधा ईन्च तथा पौना इंच होता है। इसे ही सुखाकर इसे दोनों छोर से सीधा काटकर इसमें छेद डाल दिए जाते हैं इसी प्रकार बांसुरी का निर्माण कर लिया जाता है।

सिरमौरी लोक संगीत में इस वाद्य का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। पर्वतीय क्षेत्र में गांव–गांव में रमणीक घाटियों में गूंजने वाली बांसुरी की ध्वनि बरबस ही श्रोताओं का मन मोह उसे मन्त्र मुग्ध कर देती है। लोक संगीत का वादक कलाकार विशिष्ट स्वर ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण केवल मात्र उन्हीं लोक गीतों का वादन अपने वादन में करते हैं जिन्हें वे खुद गाते हैं तथा उनका स्वर विस्तार लगभग एक ही सप्तक में रहता है। एक लोक–वादक कलाकार जिसे स्वर सम्बन्धित कोई विशेष ज्ञान नहीं होता किसी भी एक आवाज या ध्वनि को आधार मानकर शास्त्रीय संगीत की जटिलताओं को छोड़कर स्वतन्त्र मन से अपना वादन करता है। अतः लोक संगीत में बांसुरी वादन की एक स्वतन्त्र विधि

है। बांसुरी सिरमौर जनपद् में एक श्रृंगारिक लोक वाद्य है यह केवल मात्र लोक गीतों के गायन के साथ सहायक स्वर वाद्य के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

शहनाई

शहनाई सुषिर वाद्य श्रेणी का एक परिष्कृत वाद्य है। शहनाई वाद्य लोक संगीत का ही वाद्य नहीं अपितु हिन्दोस्तानी शास्त्रीय संगीत का भी एक प्रमुख वाद्य है। शहनाई वाद्य के निर्माण की प्रेरणा के स्रोत अनेक प्राचीन सुषिर वाद्य रहे हैं। आकार एवं बनावट की दृष्टि से यह वाद्य सुषिर वाद्य करनाल का लघु रूप दिखाई देता हैं शहनाई वाद्य की उत्पति में 'पोगा' वाद्य का भी एक विशेष योगदान है। पोगा एक पत्ते का वाद्य है जो कि एक विशेष किस्म के पत्ते से बनाया जाता है। इसके लिए पते को गोल लपेट लिया जाता है जो आकार में एक नलिका के आकार का होता है। इसके बारीक सीरे से फूंक कर ध्वनि उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की वनस्पतियों के पते को ओंठों से लगाकर भी ग्रामीण बाल एवं गडरिए शहनाई की ध्वनि के समान गीतों को बजाते हैं। शायद् इसी प्रकार की चेष्टाएं शहनाई वाद्य के निर्माण स्रोत रहे हों इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं हैं। शहनाई वाद्य को सिरमौर में 'सनाई' भी कहते हैं। इस वाद्य का निर्माण स्थानीय कारीगर विशेषकर शीषम, अखरोट, खैर तथा सानण आदि की लकड़ी को खराद पर चढ़ाकर विभिन्न प्रकार के लौह निर्मित, उपकरणों की सहायता से करते हैं। इसकी लम्बाई लगभग एक फुट से लेकर सवा फुट तक रखी जाती है। एक छोर जिसे वृताकार भाग कहते हैं इसके वृत का घेरा लगभग दस इंच तथा वृताकार भाग में एक कोने से दूसरे कोने की दूसरी लगभग सवा तीन इंच रखी जाती है।

लकड़ी की मोटाई लगभग पौना सेण्टी मीटर तथा जिस भाग पर बजाने के लिए रीड अथवा पत्ता लगाया जाता है उसकी मोटाई तीन ईन्च रखी जाती है। सिरमौरी शहनाई में स्वरोत्पति के लिए आठ छिद्र होते हैं। रीड लगाने के लिए एक ताम्बे अथवा पीतल की नली में धागे को लपेटकर सरकण्डे का पत्ता लगाया जाता है इसे शहनाई के साथ जोड़कर वायु पूरित की जाती है तथा ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इस तरह सिरमौर जनपद् के इस मांगलिक वाद्य को निर्मित किया जाता है। इसका अग्र भाग आगे को खुला हुआ तथा पीछे की ओर धीरे–धीरे तंग होता है और इस नलिका पर पत्ता या रीड स्थापित किया जाता है। इस प्रकार सर्वप्रथम पत्ता, नली और काठ की बनी हुई शहनाई आपस में जुड़ जाते हैं। इसके साथ जंजीर के साथ एक नुकीली कील जो प्रायः चान्दी

अथवा पीतल की बनी होती है तथा लटकी रहती है। इस कील का प्रयोग नली के साथ रीड अथवा पत्ता बान्धने के लिए किया जाता है।

यह वाद्य बहुत ही मधुर तथा आकर्षक ध्वनि वाला वाद्य है। इसकी सुन्दर एवं मधुर ध्वनि वादक कलाकार की कठोर एवं सतत साधना का परिणाम है। वादन के लिए तैयार किए गए पते को सर्वप्रथम पानी में भिगो लिया जाता है। इसके पश्चात् वादन के समय भी वादक अपनी जिहवा से पते को लगातार गीला करता रहता है। इस वाद्य का वादन की दृष्टि से क्षेत्र विस्तार, शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, चित्र पट संगीत तथा लोक संगीत तक है। शहनाई के व्यापक क्षेत्र का आधार इसका विस्तृत स्वर विस्तार है। शहनाई में कुल आठ रन्ध्र हैं इसलिए इसका स्वर विस्तार मन्द्र सप्तक के मध्यम स्वर से तार सप्तक के पंचम स्वर तक रहता है। मुख्य तौर पर अग्रभाग के चार छिद्र खुले रहने पर मध्य सप्तक 'सा' तीन छिद्र खुले रहने पर मन्द्र सप्तक निषाद इसी प्रकार छिद्र खुले रहने पर 'घ' एक छिद्र खुला रहने पर पंचम और सब छिद्र बन्द रहने पर 'म' स्वर की उत्पति होती है। इसी प्रकार षड़ज के पश्चात रिषभ, गन्धार, मध्यम तथा पिछले भाग के छिद्र खोलने पर पंचम स्वर की उत्पति होती है इसी छिद्र को खुला रखते हुए फिर अग्रभाग से छिद्र खोलते हुए धैवत, निषाद् तथा तार षड़ज आदि स्वरों की उत्पति होती है। छिद्र को आधा खोलने पर कोमल–स्वरों की ध्वनि उत्पन्न होती है। शहनाई वाद्य का वादन मांगलिक अवसर, देव पूजा तथा विवाह शादियों आदि में समान रूप से किया जाता है। इस वाद्य को समाज के निम्न वर्ग के लोग – तूरी, ढाकी, तथा लोहार विशेषकर बजाते हैं।

करनाल

'करनाल' वाद्य सिरमौर जनपद् का एक प्राचीन लोक वाद्य है। इस वाद्य के ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम मिलते हैं, लेकिन अनेक प्राचीन मन्दिरों में यह वाद्य अपनी पूर्ववत स्थिति में हमें मिलता है। करनाल शब्द दो शब्दों का संयोग है कर+नाल। कर का अर्थ है हाथ और नाल का अर्थ खोखली धातु का टुकड़ा। करनाल वाद्य से मिलते–जुलते एक वाद्य का उल्लेख संगीतसार ग्रन्थ में किया गया है इस वाद्य को भुपाड़ो कहा जाता था इस विषय पर डॉ0 लालमणि मिश्र के अनुसार, ''इसका आकार तीन हाथ लम्बा होता था। फूंक कर बजाया जाने वाला, होने के कारण इसका भीतर से खोखला होना स्वभाविक था। इसका मुख धतूरे के फूल के आकार का होता था। इसके मध्य में दो छिद्र होते थे। ''संगीत सार'' के अनुसार इसे भूपाड़ों कहने का प्रचार था।''